अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अगस्त २०२२

श्रीअरविन्दार्पण

अग्निशिखा अगस्त २०२२ वर्ष ५३, अंक १, पूर्णांक ६२४

विषय-सूची

श्रीअरविन्दार्पण

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय ३

श्रीअरविन्द की कविताएँ ५-२१

कौन?/तड़ित का एक शक्तिशाली तनय/ईशत्व/
प्रस्तर देवी/अन्तरस्थ अधीश्वर/मुक्ति/आमन्त्रण/
कृष्ण/समर्पण/नील विहग/अन्तरवासी विश्वपुरुष/
अन्तहीन पराक्रम/प्रकाश/स्वर्णिम प्रकाश/मातृशक्ति/
एक देवता का श्रम

श्रीअरविन्द — नारायण प्रसाद 'बिन्दु' २६
बिखरे पन्ने — अरुणा देवी ३०
सबसे अच्छी जीवनी — यशपाल जैन ३५
श्रीअरविन्द के ग्रन्थों का अध्ययन — 'श्रीमातृवाणी' से संकलित ३६

'पुरोधा'

दैनन्दिनी ३८
देवाधिराज — वन्दना ४१
मिट्टी की देह में (कविता) — डॉ. सुमन कोचर ४३
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन':
पिछले जन्म की स्मृति — नवजातजी ४४
ताकि वहाँ भी आपको पहचान लूँ — वन्दना ४७

सन्देश

“हे प्रभो, आज सवेरे तूने मुझे यह आश्वासन दिया है कि तू हमारे साथ अपना कार्य चरितार्थ होने तक बना रहेगा, केवल एक ऐसी चेतना के रूप में नहीं जो रास्ता दिखाती है और प्रकाश देती है, बल्कि कार्य में सक्रिय ‘उपस्थिति’ के रूप में रहेगा। तूने ऐसी भाषा में वचन दिया है जिसमें कोई भूल नहीं हो सकती कि तेरा सब कुछ यहाँ बना रहेगा और धरती के वातावरण को तब तक न छोड़ेगा जब तक धरती का रूपान्तर न हो जाये। वर दे कि हम इस अद्‌भुत ‘उपस्थिति’ के योग्य बन सकें, कि अब से हमारे अन्दर की हर चीज़ इस एक संकल्प पर केन्द्रित हो कि हम अधिकाधिक पूर्णता के साथ तेरे उच्च ‘कार्य’ की सिद्धि के लिए समर्पित हों।”

—श्रीमाँ

सम्पादकीय : श्रीअरविन्द के १५०वें जन्मोत्सव के पावन अवसर पर हम गंगा में गंगाजल के अर्घ्य-स्वरूप, उन्हीं की कुछ कविताओं की माला पिरो कर उनके चरणों में भेंट कर रहे हैं; साथ ही, इस बात से अच्छी तरह अवगत होने के बावजूद कि उनके जीवन को कोई इन्सान परख नहीं सकता, हम श्री नारायण प्रसाद ‘बिन्दु’ का उनके बारे में लिखा लेख देने की धृष्टता कर रहे हैं।

हम सभी जानते हैं कि देशबन्धु श्री चित्तरञ्जन दास ने श्रीअरविन्द के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन्हीं की भांजी, श्रीमती अरुणा देवी का एक मनमोहक लेख देने के लोभ का संवरण करना भी हमारे बस के बाहर की बात थी, उसे भी यहाँ उपयुक्त स्थान मिल गया है।

कविताओं के हिस्से में उनकी कविता Who (कौन) से आरम्भ कर रहे हैं और A God's labour (एक देवता का श्रम) से समाप्त।

नीरवता के शिखरों पर

अनन्त समुद्र के परे, नीरवता के शिखरों पर,
अग्निशिखा थामे,
उतरे वे स्वर्ण पुरुष,
जगत् को निहारा उन्होंने, ताकि उनकी महानता और उद्वेग
निर्मुक्त हो बह उठें उसमें।

CWSA खण्ड २, पृ. ६४९

कौन?

वन-उपवन की हरियाली में और गगन के नीलेपन में,
किसने अपनी कला दिखलायी दिव्य-छटामय कर चित्रण?
गगन-गर्भ में पड़े पवन जो निद्रा से होकर अभिभूत,
किसने उन्हें जगाया, बोलो, और भेजा कर निज दूत?

खोया हुआ वह हृदय-कुञ्ज में, प्रकृति-गुहा में अन्तर्धान,
पाया जाता पुनि मस्तक में रचते हुए विचार-वितान।
रूप-रंग में फूलों के वह ताना-बाना बना हुआ,
तारावलि के जगमग-जगमग किरण-जाल में फँसा हुआ।

वही पुरुष की बलवत्ता, अरु नारी की सुन्दरता में,
वही बाल की हँसी-ख़ुशी अरु बाला की लज्जारुणता में।
वही हाथ जिसने फेंका बृहस्पति को लट्टू-सम नभ-प्रांगण में,
वही व्यक्त सब कौशल करता कुञ्चित लटके सिरजन में।

ये तो उसके छद्मवेश, उसकी छायाएँ, उसके काम;
स्वयं कहाँ वह छिपा हुआ है, पाया है उसने क्या नाम?
क्या वह ब्रह्मा, विष्णु, वही है? क्या वह नर अथवा नारी?
एक अकेला, यमज बना वह, तन-विरहित या तनधारी?

हृदय हमारे वास करे है श्याम-सलोना बालक एक,
शीर्ष हमारे राज करे है नग्न-भयंकर नारी एक।
गिरियों के हिम पर देखा है उसको ध्यान-मग्न आसीन,
लोकों के हिय में पाया है उसको सतत कर्म में लीन।

जग में प्रकटित कर डालेंगे हम उसकी चालाकी, करतूत,
आनन्द छकता घोर यन्त्रणा, राग-द्वेष, पीड़ा-सम्भूत।
शोक हमारा अति प्रिय उसको, हमें रुलाना उसका काम,
पीछे से फिर फुसला लेना दिखा रूप सुन्दर, सुखधाम।

संगीत-सकल को तू केवल उसके हँसने की ध्वनि जान,

सौन्दर्य समस्त उसी के आनन्द की मादक मुस्कान;
जीवन उसके हिय का स्पन्दन, पुलक हमारा मधुर-मिलन
श्रीराधा अरु कृष्ण-कान्ह का, प्रेम यहाँ उनका चुम्बन।

भेरीगण के तुमुल नाद में शक्ति-रूप से वही प्रकट,
रथारूढ़ हो युद्ध करे अरु भालों की बौछार विकट;
हनन करे जी खोल खटाखट, करुणा में वह सिन्धु समान;
जूझे है वह लोक-पक्ष में, अरु जग के अन्तिम कल्याण।

लोक-सकल के द्रुत धावन में, युग-युग की लहरों में घोर,
अकथनीय, वह, सर्वशक्तिमय, भव्य-विराट् और निर्दोष;
मनीषियों की अन्तिम चोटी, उससे भी वह ऊर्ध्व अतीत,
राजमान वह उन धामों में जो शाश्वत अरु कालातीत।

मानव का है वह तो स्वामी अरु अनन्त प्रेमी उसका,
हृदय हमारे के समीप अति, पर दर्शन दुर्लभ उसका;
क्योंकि अन्ध हम निज घमण्ड से, राग-छटाओं से मतिमन्द,
जकड़े हैं हम निज विचार में, समझ रहे ख़ुद को स्वच्छन्द।

सूरज में बस अजर-अमर जो वह तो है उसकी काया,
अर्ध-रात्रि में अँधियारा जो वह जानो उसकी छाया;
अन्धकार जब अन्धा था अरु अन्धकार से आच्छादित,
बैठा था वह बीच उसी के एकाकी अरु बृहत्-अमित।

CWSA खण्ड २, पृ. २०१-०३

तड़ित का एक शक्तिशाली तनय

आया नीचे भूतल पर तड़ित का एक शक्तिशाली तनय
वेगमय अग्निल चरण के साथ, प्रदीप्त;
हुआ जन्म एक गर्भ में ज्योति का और वज्र-बल से हुआ
युक्त एक मानव-रूप।
स्वर्ग की शान्त गति, मधुर महानता, निर्विकार आवेग,
द्रुतगामी शक्ति हो गयी अवतरित;
करने लगे सब देवगण आवास एक मर्त्य देह में
धारण किया एकमात्र नाम।

गति की एक विस्तृत लहर ने दिया झकझोर सारे मन्द
भूमण्डल को हरेक सुहाने स्वप्निल परत तक;
जीवन को ढाल दिया गया भव्यता में, महासागर के हाथों ने
कालचक्र थाम लिया।
मानव आत्मा थी पुनः एक भव्य सारथी दिवसों की
अवक्रित देवों की प्रचण्ड निर्भीक,
प्रक्षेपित उस एकम् के द्वारा निज झञ्झावाती पंख-सम पथों पर,
एक बाण चरम शिखरों तक मानों लक्षित किया।

गिर पड़े झनझना कर जीर्ण फलक, प्राचीन मन्द प्रकृति की
मृत दीवार दो टूक हो गयी,
किया स्वयं को नवीकृत प्रभु ने तरुण
सौन्दर्य, विचार तथा ज्योति-युक्त विश्व में;
गूँज उठे दिव्य स्वर मानव के होठों पर, हृदय जाग उठा
दीप्त आश्चर्य की उज्ज्वल उषाओं में,
वायु थी आवरण भव्यता का, श्वास एक आनन्द, जीवन
एक क्रीड़ा देवतुल्य।

CWSA खण्ड २, पृ. ६७०

ईशत्व

मैं बैठा था सन्त्रास की महातरंगों के नृत्य के पीछे
कोलाहलपूर्ण मार्ग में जो प्रतीत होता था
किसी भविष्यवादी की सनक का सृजन,
अनुभव किया अकस्मात्, प्रकृति के विवरों का करते हुए अतिक्रमण,
मेरे अन्दर, आवृत करता मुझे प्रभु का दिव्य तन।

मेरे मस्तक के ऊपर एक महामस्तक था दृष्टिगत,
अमर्त्यता से प्रशान्तिपूर्ण एक मुखमण्डल
और एक सर्वशक्तिशाली दृष्टि जो धारे थी दृश्य जगत्
अपनी प्रभुता के वृत्त में विशाल।

उसके केशों में सूर्य और समीर हुए थे सम्मिश्रित;
मैं था वह और उसके हृदय में जगत् था सन्निहित :
मैंने बसाया था चिरन्तन की शान्ति को अपने भीतर,
एकमेव की शक्ति जिसका सार कभी न सकता मर।

क्षण बीत गया और सब कुछ था पूर्ववत्
मैं सँजोये था केवल वह स्मृति अमृत।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०७

प्रस्तर देवी

देवों के नगर में, प्रतनु देवायतन में प्रतिष्ठित,
शिल्पित अंगों से देवी ने मुझ पर किया दृष्टिपात—
एक जीवन्त उपस्थिति अमर्त्य और दिव्य,
एक रूप जो सारी अनन्तता को देता प्रश्रय।

महान् जगन्माता और उसकी इच्छाशक्ति प्रबल
निःस्वर, सर्वशक्तिशाली, अबोधगम्य, वाग्-रहित
आकाश और पाताल में, मरुस्थल
और पृथ्वी की नितलीय निद्रा में अध्यासित।

सम्प्रति मन से आवरित वह है अवस्थित, और मौन,
निःस्वर, अबोधगम्य, सर्वज्ञ, रहती गोपन
जब तक हमारी आत्मा देखे, करे श्रवण
रहस्य उसकी मूर्तिमत्ता का विलक्षण,

उपासक में और इस निश्चल आकार में वही अनन्य,
एक सौन्दर्य एक रहस्य मांस या प्रस्तर से प्रच्छादनीय।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०८

अन्तरस्थ अधीश्वर

आविर्भाव हुआ अन्तर्गत, चेत उठी प्रभु की महिमा।
प्रकृति-क्षेत्र पर स्थापित होती अधिकाधिक उनकी प्रभुता।
छोड़ दिया है मेरे मन ने मस्तकरूपी कारा को।
ढाल रहा ऊँचाई से वह सुप्रकाशमय सागर को।

प्राण शक्ति मम बाट जोहती शुद्ध-शान्त-महिमा-मण्डित।
प्रस्तुत है वह पालन करने, हो जो कुछ प्रभु का इंगित।
तोल लिया सुविशाल पंख को उसने अपने गरुड़-समान।
स्वर्ग-लोक के अमर निवासी जिस पर चढ़ करते प्रस्थान।

आनन्द-हर्ष के उद्गम में अब परिणत स्वर्णिम इन्द्रिय द्वार।
स्पर्श-शब्द प्रत्येक रूप अब गद्गद करता हृदयागार।
अन्ध और जड़ अन्न-कोष को प्लावित करती है रसधार।
ज्योतिर्मय आवाहन प्रभु का मम अन्धकार से उत्तर पा।

एक दिवस यह प्रकृति-क्षेत्र मम बैठा होगा ईश-समान।
विजय प्राप्त कर बन जावेगा अजर, अमर, अनन्त, प्रशान्त।

CWSA खण्ड २, पृ. ६१३

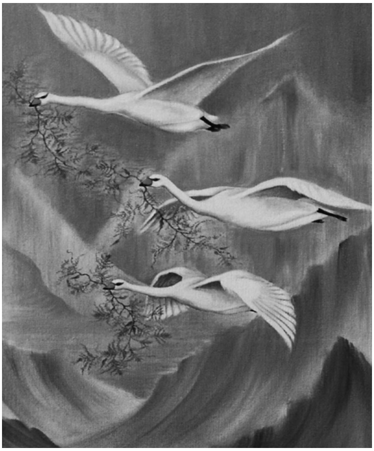

मुक्ति

मन के चक्कर-नाच को अपने में से फेंक दिया मैंने
अब हूँ खड़ा मैं मुक्त, आत्मा की नीरवता में;
हूँ मैं कालातीत और अमर, प्राणि-जाति-जग से परे,
अपनी ही शाश्वतता का केन्द्र हूँ मैं।

मैं निकल कर बच गया, तुच्छ स्व मेरा हो गया है मृत;
मैं हूँ अमर्त्य, अकेला, अनिर्वचनीय;
चला गया मैं बाहर विश्व से जिसे किया था मैंने निर्मित,
और हो गया हूँ वर्धित अकथ्य, अपरिमेय।

एक बृहत् अनन्त प्रकाश में है मन मेरा निस्तब्ध,
हृदय मेरा आनन्द व शान्ति का एकान्त स्थान,
इन्द्रियाँ मेरी स्पर्श, ध्वनि और दृष्टि के जाल से हैं मुक्त,
धवल अनन्तताओं में एक बिन्दु मेरा तन।

परम सत्ता का एकमात्र अचल आनन्द हूँ मैं:
पृथक् नहीं मैं, जो सर्व है वही हूँ मैं।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०४

आमन्त्रण

(अलीपुर जेल में लिखी कविता, १९०८-०९)

अपने चारों ओर टकराते मौसम और झञ्झावात को लेकर
मैं बंजर भूमि की ओर कर रहा प्रस्थान और ऊपर पर्वत पर।
कौन आयेगा मेरे साथ? कौन मेरे संग करेगा आरोहण?
विषम सरिता को पैदल करेगा पार
और बर्फ़ के बीच करेगा सञ्चरण?

तुम्हारे द्वारों और तुम्हारी दीवारों से संवृत
नगरों की संकीर्ण परिधि में नहीं है मेरा वास;
परमात्मा है मेरे ऊपर का नील आकाश,
मेरे सम्मुख है पवन और झञ्झावात का उत्पात।

यहाँ अपने प्रदेशों में एकाकीपन से मैं करता मनोविनोद,
विपद् और दुर्भाग्य को बनाया है मैंने अपना सुहृद।
कौन रहेगा विशाल होकर? कौन जियेगा होकर स्वाधीन?
यहाँ पवन से परिमार्जित उच्चभूमियों पर करके आरोहण।

मैं हूँ पर्वत और तूफ़ान का अधीश्वर,
मैं स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान का हूँ चैत्यात्मन्।
जो मेरे साथ चले और मेरे राज्य का हो अंशधर
उसे होना चाहिये अटल और संकटों का ज्ञातिजन।

CWSA खण्ड २, पृ. २०१

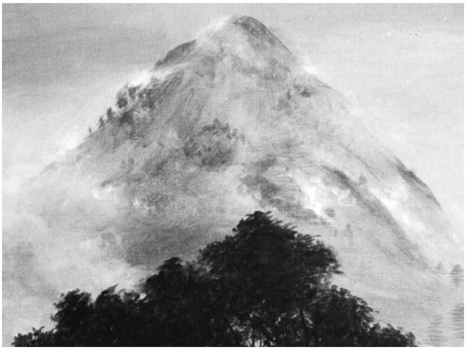

कृष्ण

अन्ततः मुझे मिला इस मधुर और भीषण
जगत् में आत्मा के जन्म का उद्देश्य,
मैंने अनुभव किया पृथ्वी का क्षुधित हृदय जो
अभीप्सा करता है स्वर्ग के परे कृष्ण के चरण।

मैंने देखा है अमर नयनों का सौन्दर्य,
मैंने सुना है प्रिय का मादक वंशी-नाद
और जाना है मृत्युरहित आनन्द का आश्चर्य
और अपने हृदय में दुःख को, जो है सदा के लिए निर्वाक्।

निकट और निकटतर अब संगीत आ रहा,
विलक्षण हर्षातिरेक से जीवन थरथरा रहा;
सम्पूर्ण प्रकृति है एक विशाल विरमावस्था अनुरक्तिपूर्ण
निज प्रभु के स्पर्श, आलिंगन, तन्मयता की आकांक्षिण।

जीवित रहे विगत युग इस एक क्षण को लक्ष्य कर;
जगत् धड़कता है कृतकृत्य मुझमें अब चिरकाल के अनन्तर।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०८

समर्पण

ओ तू मैं जिसका यन्त्र हूँ,
हे दिव्य आत्मा और प्रकृति मुझमें अधिष्ठित,
तेरी दिव्यता के प्रशान्त प्रभामण्डल में
मेरी समग्र मर्त्य सत्ता हो जाये सम्मिश्रित।

मैंने दिया है अपना मन कि उत्खनित हो तेरा प्रणाल मन,
तेरी परमेच्छा बनाने को मैंने अर्पित की है अपनी कामना :
हमारे इस परम गुह्य और अनिर्वचनीय मिलन में
पीछे न रह जाये शेष किञ्चित् मेरा अपना।

मेरा हृदय धड़केगा तेरे प्रेम के विश्व-स्पन्दनों के संग,
पृथ्वी पर कार्य करने के लिए मेरा तन हो जायेगा तेरा यन्त्र;
मेरे स्नायु और शिराओं में तेरे हर्ष-प्रवाहों का होगा सञ्चार;
तेरी शक्ति को करने निर्बन्ध,
प्रकाश के मृगया-कुक्कुर होंगे मेरे विचार।

केवल मेरी आत्मा का करना प्रतिपालन
अनन्तकाल करने को आराधन
और तेरे हर रूप और हर आत्मा में
उसका हो तुझसे मिलन।

CWSA खण्ड २, पृ. ६११

नील विहग

मैं हूँ अखिलेश्वर का पंछी,
रमता उसके नील गगन में, ऊँचे-ऊँचे अति ही ऊँचे
गाता गाने स्पष्ट स्वरों में, मधुर-मधुरतम सच्चे-सच्चे
पड़ते जो प्रभु के कानों में।

मर्त्य-लोक से उठ चढ़ता मैं
अग्नि-शिखावत् नभ अशोक में
आनन्द वह्निकण बरसाता मैं
दुःख-शोकमय इस धरती पर।

पंख पहुँचते मेरे उस तल
देश-काल सीमा अतीत कर
ज्योति जहाँ झरती कनकोज्ज्वल,
अम्लानमयी वर्षा-सी।

लाता हूँ मैं वदन कमल लख
शाश्वत का आनन्द परम
और गुहा में स्थित आत्मा के
दर्शन का वरदान चरम।

लोक सकल की नाप-तोल मैं करता निज मणि-सम नयनों से;
ज्ञान-वृक्ष पर बैठा हूँ मैं, लदा हुआ नन्दन सुमनों से
खड़ा हुआ जो शाश्वतता की
अजस्र धाराओं के तट पर।

हिय ज्वलन्त से मेरे कुछ भी छिपा नहीं है नीचे ऊपर;
मन अपार मम नीरवतामय;
गायन मम आनन्द सघन की ललित कला उत्तम रहस्यमय;
मम उड़ान इच्छा अमर्त्य की।

CWSA खण्ड २, पृ. ५३३

अन्तरवासी विश्वपुरुष

मेरे आत्मालिंगन में सम्पूर्ण जगत् है अन्तर्विष्ट :
मुझमें स्वाति और पुष्य नक्षत्र होते हैं प्रदीप्त।
जब मैं देखता कोई भी रूप जीवन्त
एक अन्य मुखाकृति लिये मैं करता अपना ही दर्शन।

जो मुझे देखते वे सब नयन हैं केवल मेरे ही नयन;
मेरा है हर वक्ष में धड़क रहा एक हृदय उसका स्पन्दन।
संसार के सुख मुझमें मदिरा-सम प्रवहमान,
इसके लक्ष्य दुःख-ताप मेरी यन्त्रणाएँ महान्।

फिर भी इसके समस्त कार्यकलाप मेरी सतह पर
बहती तरंगें हैं केवल; अन्तर में सदा स्थिर,
मैं हूँ आसीन कालरहित, स्पर्शातीत, अजात;
मेरे शान्त दर्पण में छाया हैं सकल पदार्थ।

मेरी विशाल परात्परता विश्व-चक्र को करती है धारण;
सागर में मुक्तावत् मैं हूँ इसमें प्रच्छन्न।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०१

अन्तहीन पराक्रम

मेरी नौका ने किया है जलावतरण
एक अनाम अनन्त के जलधि पर; मैंने छोड़ दिया मानव-तट।
मेरे पीछे सब हो गया लुप्त और मैं देख रहा अज्ञात
अतल सामने और संकेत करती एक ज्योति क्षीण।

एक अदृश्य हाथ नियन्त्रित करता मेरी पतवार। रात
एक काले गलियारे में समुद्र को कर देती प्राचीरावृत—
एक अचेतन बुभुक्षा का सिंह करता विप्रलाप और गर्जन
या मृत वैखानस का समुद्र शयन।

मैं उस शक्ति की महानता का पाता संस्पर्श मेरे चहुँ ओर
जिसका मैं अन्वेषी; मेरे नीचे हैं उसके विशाल गह्वर।
दूर, किसी प्राणी ने नहीं किया पदाक्रान्त वह अदृश्य शिखर।
मैं उस एकाकी और अनन्य में हो जाऊँगा विलय

और जागूँगा परमेश्वर की आकस्मिक प्रदीप्ति के भीतर,
श्रुतिवाक्य का परम हर्ष और आश्चर्य।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०६

प्रकाश

प्रकाश, अन्तहीन प्रकाश! अँधेरे को नहीं अब अवकाश,
जीवन की अज्ञानी खाइयाँ तज रहीं अपनी गोपनता:
विशाल अवचेतन गहराइयाँ जो पहले अज्ञात थीं
फैली हैं प्रस्फुरित होती विराट् प्रत्याशा में।

प्रकाश, कालहीन प्रकाश अपरिवर्तनीय और पृथक्!
पवित्र मुद्रित रहस्यमय द्वार खुल रहे।
प्रकाश, प्रज्वलित प्रकाश अनन्त के हीरक हृदय से
कम्पित होता है मेरे हृदय में जहाँ मृत्युहीन गुलाब खिलता है।

प्रकाश अपने हर्षोन्माद में शिराओं में उछल रहा!
प्रकाश, विचारमग्न प्रकाश! हर आक्रान्त भावप्रवण कोशिका
आनन्द की अनुच्चरित प्रदीप्ति में क़ायम रख रही
अविनाशी का सजीव सम्बोध।

मैं सञ्चरण करता हूँ एक विस्मयकारी प्रकाश के समुद्र में
संयुक्त करता हुआ अपनी गहराइयाँ उसके शाश्वत शिखर से।

CWSA खण्ड २, पृ. ६१८

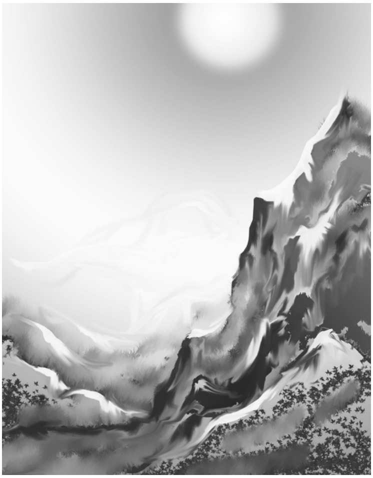

स्वर्णिम प्रकाश

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे मस्तिष्क में हुआ अवतरण
और मन के धुँधले कक्ष हो गये सूर्यायित
प्रज्ञा के तान्त्रिक तल के लिए एक उत्तर प्रसन्न,
एक शान्त प्रदीपन और एक प्रज्वलन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे कण्ठ में हुआ अवतरण,
और मेरी सम्पूर्ण वाणी है अब एक दिव्य धुन,
मेरा अकेला स्वर तेरा स्तुति-गान;
अमर्त्य की मदिरा में उन्मत्त हैं मेरे वचन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे हृदय में हुआ अवतरण
मेरे जीवन को तेरी शाश्वतता से करता आक्रान्त;
अब यह बन गया है तुझसे अधिष्ठित एक देवालय
और इसके सब भावावेगों का केवल तू एक लक्ष्य।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे पैरों में हुआ अवतरण;
मेरी धरती है अब तेरी लीलाभूमि और तेरा आयतन।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०५

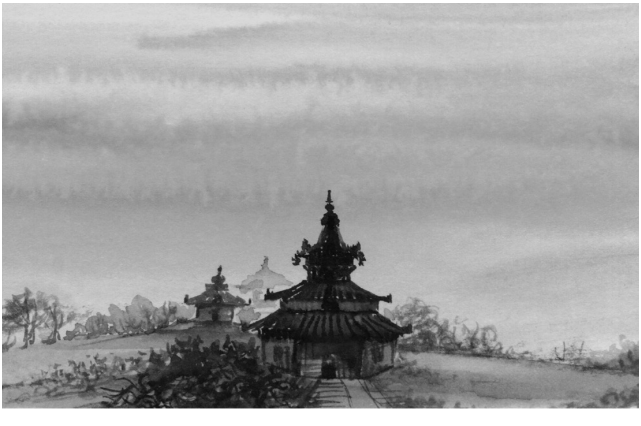

मातृशक्ति

हे सत्य, तू जो अपने गुप्त सूर्य में संरक्षित है
तू जो प्रच्छन्न स्वर्गों में मातृशक्ति के महान् चिन्तनों का स्वर है, ...
हे ज्ञान-ऐश्वर्य, जगत् जननी, ...
परम रहस्य, पवित्र वाङ्ग्मयी विद्याधिष्ठात्री,
हे विश्व-आनन्द की भास्वर स्रोत,
तू जो जगन्मुक्त, ऊपर भी अलभ्य है,
हे परम आनन्द, जो सदैव मनुष्य के निभृत अन्तर में निवास करता है,
जब कि मनुष्य तुझे बाहर खोजते और कभी नहीं पाते हैं!
तू अपनी शक्ति के पूतशुभ्र आवेश को साकार कर,
अपने एक सजीव रूप को पृथ्वी की ओर प्रेरित कर,
एक बार तेरा परम ज्ञान मर्त्य के मन में सञ्चरण करे
तेरा प्रेम अनन्य भाव से मानव हृदय में स्पन्दित हो,
ऐसा वर दे कि तेरी शोभा और स्वर्गीय श्री एक बार मूर्तिमान् होकर
पार्थिव पथ पर विचरे
एक महाशब्द शिखरों से उच्चरित हो सके
और एक महान् कर्म नियति के रुद्ध कपाट खोल दे!

श्रीअरविन्द

एक देवता का श्रम

मैंने रजत-शून्य में अपने स्वप्न सजा रक्खे हैं,
एक ओर नीलिमा, दूसरी ओर स्वर्ण-सम्पुट निर्मल।
रक्खा है सम्पुटित उन्हें कर ऊपर बड़े जतन से,
स्वप्न तुम्हारे जो हीरों से जड़े हुए अतिशय उज्ज्वल।

सोचा था, निर्मित कर कोई दिव्य सेतु सुर-धनु का
महाकाश के साथ मही का परिणय कभी रचाऊँगा।
जो सीमा के परे विश्व है, उसकी मनोदशा का
बीज कभी इस नृत्यशील लघु ग्रह के मध्य गिराऊँगा।

किन्तु स्वर्ग था दूर और वह बहुत-बहुत भास्वर था।
वायवीयता बड़ी तुनुक थी, स्पर्श न सह सकती थी।
इधर मृत्ति का मूल क्षीण था, गहराई थोड़ी थी,
अगर उतरती ज्योति अचानक, ठहर नहीं सकती थी।

जो भी लायेगा उतार कर दिव्य लोक को भू पर,
उसे प्रथम भू के कर्दम में स्वयं उतरना होगा।
ढोना होगा गहन भार वसुधा की हीन प्रकृति का,
काँटों से आकीर्ण पन्थ से स्वयं गुज़रना होगा।

स्वयं दमित कर निज विभुत्व को मैं नीचे आया हूँ
अधम भूमि पर, मैं जिसकी धूसर रज-बीज पड़ा हूँ।
अज्ञानी, श्रमनिरत मनुज की दुर्बलता अपना कर
जन्म-मृत्यु, इन दो द्वारों के अन्तर्मध्य खड़ा हूँ।

बहुत दिनों से खोद रहा हूँ, गूढ़ दीर्घ परिखा को
बिना किये चिन्ता कर्दम की, ह्रास-त्रास की, मल की।
बहे सुनहरी नदी खेय में गीत स्वर्ग का गाकर
और बसे उसमें अभंग मधुज्वाला अमर अनल की।

मिले मनुज को ज्योति, सोच यह, मैं जड़ता-रजनी से
लड़ा बहुत! अपने पर उसका अत्याचार सहा है।
किन्तु नरक की घृणा और विद्वेष भ्रान्त मानव का,
जब से दुनिया बनी, यही मेरा उपहार रहा है।

क्योंकि मनुज चाहता, वासना उसकी नित्य सफल हो।
बेचारा अपने ही भीतर के पशु से हारा है।
मन में उसने जिस पिशाच को युग से पाल रक्खा है,
उसे शोक प्रिय है, मनुज का पाप उसे प्यारा है।

यह पिशाच थर-थर करता है दिव की ज्वालाओं से।
जो कुछ है पवित्र, सुखदायी, उसे नहीं जँचता है।
लिप्सा, लौकिक सुख, विलास से और अन्त में दुःख से
वह करता है राज और अपना नाटक रचता है।

चारों ओर अशान्ति, कलह, कोलाहल और तिमिर है।
जिस प्रदीप को मनुज सूर्य कहता है, वह द्वाभा है।
भटके हुए भ्रान्त जीवन पर जो प्रकाश गिरता है,
वह अमरों की महा ज्योति की बस आधी आभा है।

मनुज जला पाता है जो छोटी मशाल आशा की,
उसका प्रभापुञ्ज बुझ जाता, शेष नहीं रहता है।
नर की सारी प्राप्ति सत्य की एक क्षुद्र कणिका है।
वह सराय है, जिसे आदमी तीर्थधाम कहता है।

सत्यों का जो सत्य, आदमी उससे भय खाता है।
प्रस्तुत है वह नहीं चिरन्तन आभा को वरने को।
वह पुकारता मूढ़ देव को और दनुज वेदी पर
मनुज बैठ जाता है दानव की पूजा करने को।

जो था पहले मिला, आज फिर उसे खोजना होगा।
क्योंकि छिन्न-मस्तक प्रतिपक्षी फिर से जी जाते हैं।
संघर्षों पर एक बार, जय पाना नहीं अलम् है।
निष्फल जीवन के समक्ष वे बार-बार आते हैं।

मुझे सहस्त्रों घाव लगे हैं, लगते ही जाते हैं।
किन्तु दानवों के प्रहार से मैं तो नहीं झुकूँगा।
जब तक परम देव की इच्छा पूर्ण नहीं होती है,
लक्ष्य-सिद्धि के बिना भला मैं पथ में कहाँ रुकूँगा?

मुझे चिढ़ाते हैं यह कह कर दनुज-मनुज, दोनों ही :—
"असम्भाव्य कल्पना तुम्हारी, तुम क्या विजय करोगे?
रँग पाओगे अन्तरिक्ष को किस प्रकार पावक से?
क्रिया नष्ट होगी, असफल हो तुम व्यर्थ ही मरोगे।

"जड़ समुद्र की छाती पर हम परित्यक्त बालक हैं
लौह नियति से बद्ध, कभी इस पर भी ध्यान गया है?
या केवल बकवास मचाने को भू पर आये हो,
स्वर्ग-लोक है सुखी, वहाँ जो कुछ है, दिव्य, नया है?

"तिमिर-क्षेत्र हो भले भूमि, पर यह धरणी अपनी है।
टिम-टिम छोटी शिखा हमारी सुथिर न रह सकती है।
यह कैसे सामना करेगी ज्वलित, दिव्य आभा का?
देव चाहते जो, उसको भू कैसे सह सकती है?

"चलो, चलें, वध करें स्वर्ग के इस प्रलापकारी का।
तभी हमारे हृदय मुक्त दुविधा से हो पायेंगे।
इसके उच्च, कठोर घोष श्रवणों में नहीं पड़ेंगे।
विस्तृत, शुभ्र शान्ति के बन्धन से भी बच जायेंगे।"

मेरे मर्त्य हृदय में पर उद्यत देवता खड़ा है
      नियति, भाग्य, प्रारब्ध, भ्रान्तियों, भूलों से लड़ने को,
नामहीन, निर्मल, विराट् के लिए विश्व के पथ पर
      पग से रौंद कुलिश कर्दम को चूर-चूर करने को।

"जाओ वहाँ, जहाँ पर कोई अब तक नहीं गया था"
      "खोदो, खोदो," ध्वनि कहती है, "आगे सत्य कहीं है।
पहुँचो नीचे उस पत्थर पर जिस पर नींव टिकी है।
      दस्तक दो उस दर पर जिसकी कुञ्जी कहीं नहीं है।"

देखा मैंने, असत् वृक्ष का मूल बड़ा गहरा था।
      चीज़ों की जड़ से असत्यता लिपटी हुई पड़ी थी।
हरि सोये थे महा सर्प पर जटिल योग-निद्रा में।
      भूरी नरसिंहनी भीष्म पहरे पर जगी खड़ी थी।

मन के सतह-लोक पर है जो देव, और जीवन का
      जो समुद्र है असन्तृप्त, दोनों को मैंने छोड़ा।
फिर शरीर की अन्य वीथियों में डुबकियाँ लगा कर
      चरणों को मैंने रहस्यमय अधोलोक दिशि मोड़ा।

छाना है मैंने प्रचण्ड उर-अन्तर मूक मही का।
      पीड़ा, आह, कराह, दर्द की घण्टी वहाँ सुनी है।
देखा है वह स्रोत, जहाँ से दुःख जन्म लेते हैं।
      और नरक कैसे बनता है, यह भी बात गुनी है।

मैं हूँ जहाँ, वहाँ ऊपर विषधर फुंकार रहे हैं,
      पैशाचिक आवाज़ गुमड़ कर क्षण-क्षण रही उबल है।
      पर मैंने तो शून्य चीर उस स्थिति को देख लिया है,
जहाँ प्रथम आभा प्रकटी, पहला विचार जनमा था।
      घूम चुका हूँ उस खाई में जो नितान्त निस्तल है।

उच्च, भयावह सोपानों पर मेरे चरण पड़े हैं।
      कवच पहन निस्सीम शान्ति का, रहा किन्तु निश्चल मैं।

ले आया आख़िर पावक मैं ईश्वरीय आभा का
और उसे बो दिया मनुज के अगम, अगाध, अतल में।

तब भी था मैं वही, सदा जो मेरा रूप रहा था।
पर जो थे आवरण, किसी ने उनको फाड़ दिया है।
प्रभु की वाणी सुनी और मैंने उनकी इच्छा को
निज प्रशान्त, विस्तृत ललाट पर सादर वहन किया है।

गहराई जुड़ गयी शिखर से, सेतु हुआ निर्मित है।
अब स्वर्णिम जल का प्रपात नीरव, अजस्र झरता है
उस सुनील पर्वत से जो सुरधनु से सजा हुआ है।
इस तट से उस तट तक जल जगमग जगमग करता है।

दीप्त हो उठा अनल स्वर्ग का, पृथ्वी की छाती में।
अमर सूर्य अब तो जलता है इसी मृत्ति-वेदी पर।
चमत्कार, पड़ गया रन्ध्र जन्मान्तर के बन्धन में।
जिसने देह धरी थी वह आत्मा अखण्ड, अविनश्वर—

चाह रही बनना सत्-चित्-आनन्द-लोक की ज्वाला।
स्वर्णारुण सोपान-मार्ग पर पग नीचे धरते हैं—
दिव के अमृत-पुत्र अनुरञ्जित अपनी ही आभा से।
"उन्मूलित हो गया तिमिर", यह तूर्यनाद करते हैं।

तनिक और है देर, द्वार-पट इस नवीन जीवन के
रचित-खचित होंगे प्रकाश से, चन्द्रमूर्ति-आभा से।
छत होगी स्वर्णाभ और गच होगा मणिकुट्टिम का।
सारा जगत् प्रकाशमान होगा अपरूप विभा से।

अपना स्वप्न छोड़ दूँगा मैं उज्ज्वल रजत-पवन में।
नील-स्वर्ण परिधान पहन कर ज्योति अलौकिक धारे
रूपान्तरित इसी पृथ्वी पर तब मनोज्ञ, मंगलमय
धर कर देह करेंगे विचरण जीवित सत्य तुम्हारे।

CWSA खण्ड २, पृ. ५३४-३८

श्रीअरविन्द

समय-समय पर पृथ्वी पर कुछ ऐसे पुरुष आते हैं जो हमारी तरह नहीं होते। यह ठीक है कि देखने-सुनने में वे दूसरों से भिन्न नहीं होते पर यह भी सत्य है कि हममें उनमें इतना अन्तर होता है जितना यहाँ के सुख और स्वर्ग के विमल प्रकाश और आनन्द में। क्योंकि उनमें आनन्द का प्रकाश होता है। पृथ्वी के पुत्रों में वे देव-पुत्र होते हैं। ऐसे देव-पुत्र में श्रीअरविन्द की बचपन से गणना थी।

आकाश जब प्रकाश के लिए प्रार्थना कर रहा था तब पृथ्वी पर उनका आविर्भाव हुआ। वह दिन था १८७२ की १५ अगस्त। तब कौन जानता था कि वह दिवस भारतीय स्वतन्त्रता के आकाश में सुनहरे सितारे-जैसा चमकेगा। श्रीअरविन्द के पिता का नाम था डॉ.कृष्णधन। डॉक्टरी पढ़ने के लिए उन्हें विलायत जाना पड़ा था, वहीं विलायती सभ्यता का उन पर रंग चढ़ा। उनका विवाह राजनारायण बोस की कन्या से हुआ था। ऋषि राजनारायण भारतीय संस्कृति के बड़े पक्के अनुयायी थे। भारतीय गौरव से वे अपने को गौरवान्वित मानते थे। भारतीय सभ्यता को वे किसी तरह भी नीचा नहीं देखना चाहते थे, किन्तु डॉ.कृष्णधन पाश्चात्य सभ्यता से इतने प्रभावित थे कि उनके घर में आपस में बातचीत भी अंग्रेज़ी में ही होती थी। रहन-सहन तो अंग्रेज़ों-जैसा था ही। यह थी श्रअरविन्द को मातृ और पितृकुल की देन।

डॉ.कृष्णधन के श्रीअरविन्द तीसरे पुत्र थे। अपने बच्चों को डॉक्टर साहब अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। स्वर्ग की उन्हें परवाह नहीं थी पर बच्चे आकाश में शुक्र-तारे की तरह चमकें यही उनकी धुन थी। शुरू से ही श्रीअरविन्द पर उनकी बड़ी अच्छी धारणा थी और उनसे वे बहुत कुछ आशा भी रखते थे। जब श्रीअरविन्द पाँच वर्ष के थे तभी उन्होंने उन्हें दार्जिलिंग पढ़ने के लिए भेज दिया और सात वर्ष की आयु में अपने साथ लेकर विलायत चले गये, फिर उन्हें ड्रुएट परिवार के पास छोड़ कर भारत लौट आये। इस छोटी उमर में माता-पिता से हज़ारों मील दूर श्रीअरविन्द रहने लगे। श्रीअरविन्द ने वहाँ पढ़ने में ख़ूब मन लगाया। ढेर-की-ढेर पुस्तकें पुरस्कार में पायीं। जिनके यहाँ वे रहते थे वे लैटिन

के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने श्रीअरविन्द को लैटिन की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि जब वे मैनचेस्टर से लन्दन के स्कूल में पढ़ने गये तो उस स्कूल के हेडमास्टर ने स्वयं उन्हें ग्रीक पढ़ाने का भार लिया और बड़ी तेज़ी से स्कूल की ऊँची कक्षाओं में तरक्की देते गये। अन्त में वे उस स्कूल से सीनियर क्लासिकल स्कॉलरशिप के साथ किंग्स कॉलेज में भरती हो गये। स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई तो उनके लिए बाँयें हाथ का खेल थी। उनका अधिक समय विभिन्न देशों के साहित्य, इतिहास, काव्य आदि के अध्ययन में ही व्यतीत होता। १८ वर्ष की आयु में उन्होंने आई.सी.एस. परीक्षा दी और उसकी खुली प्रतियोगिता में पास हुए। वहाँ ग्रीक और लैटिन में उन्हें तब तक के सबसे अधिक नम्बर प्राप्त हुए थे। पर दैवी प्रेरणावश घुड़सवारी में शामिल नहीं हुए। होते कैसे? जिनका जन्म भारत में अंग्रेज़ी शासन के मूल को हिला देने के लिए हुआ था वे उसके शासन को भारत में मज़बूत करने वाले नियम-पत्र पर हस्ताक्षर कैसे कर सकते थे? आई. सी.एस. के पद का नाम उन दिनों सोने के सिंहासन-जैसा था। किन्तु देश के हित इसी उमर में उन्होंने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। देश के लिए इतना त्याग उन दिनों नयी-सी बात थी। उनमें यह साहस तब था, जब वे यौवन के द्वार पर खड़े थे।

ग्यारह वर्ष की उमर में ही श्रीअरविन्द ने अनुभव किया था कि संसार में कोई बड़ी भारी उथल-पुथल आने वाली है और उसमें उनको भाग लेना है। त्याग और तपस्या के विद्यालय में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। लन्दन जैसे शहर में बैठ कर श्रीअरविन्द ने मुनिकुमारों जैसा जीवन बिताया था। बचपन से ही वे राजनीति में भाग लेने लगे थे। जब उन्होंने भारत के प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध दादाभाई नौरोजी की ख़ुशामदी नीति पर आवाज़ उठायी तो लोग उनके साहस को देख कर दंग रह गये। श्रीअरविन्द जब विलायत में थे तभी उनकी बड़ौदा के गायकवाड़ से भेंट हुई। वे उनसे मिल कर इतने प्रभावित हुए कि उसी समय अपने राज्य में रखने का वचन दे दिया। १८९३ में श्रीअरविन्द भारत के लिए रवाना हुए।

बचपन से ही श्रीअरविन्द को कविता से प्रेम था। अपने प्रवास में श्रीअरविन्द ने पाश्चात्य साहित्य का ख़ूब अध्ययन किया था। किन्तु भारतीय संस्कृति से वे बिलकुल अछूते रह गये थे। यह कमी उन्होंने बड़ौदा में पूरी

की। वहाँ प्राच्य संस्कृति का ख़ूब छक कर पान किया। बड़ौदा आने के बाद ही 'इन्दुप्रकाश' नामक पत्र में वे राजनीतिक लेख लिखने लगे और उसमें नरम पन्थियों की बड़ी कड़ी आलोचना की थी। पर समय अनुकूल न देख कर उन्हें अपना हाथ समेट लेना पड़ा। सन् १९०५ में जब बंग-भंग हुआ तब वे स्थिर न रह सके और राजनीति में कूद पड़े।

उन्हीं से भारत में स्वतन्त्रता के युग का आरम्भ हुआ। तीन-चार वर्ष ही वे भारत के राजनीतिक क्षेत्र में रहे पर इन चन्द वर्षों में ही अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिये। जो अंग्रेज़ भारत में अपना शासन अचल और शाश्वत समझते थे उनके प्राण सूख गये। कुछ दिनों में श्रीअरविन्द ने दिखला दिया कि भारत की भूमि बंजर नहीं है। देश के लिए मर मिटने वाले यहाँ पैदा हो सकते हैं। आवश्यकता थी योग्य कार्यकर्ताओं की, स्वयं जल कर भूमि को हरा-भरा कर देने वाले वीरों की। 'वन्दे मातरम्' और 'कर्मयोगिन्' में जो कुछ उन्होंने तब लिखा था वह आज भी जीवित होकर बोलता है। हमारे वर्तमान नेता उस समय कॉलेज में पढ़ते थे। उस युग के स्वदेशी आन्दोलन का उन पर प्रभाव पड़ा था, इसे वे आज भी नहीं भूले हैं। जिस भारत का आकाश युगों से मेघाच्छन्न था वहाँ लोगों को स्वतन्त्रता की प्रथम किरणें दिखायी देने लगीं। *गीता* की शिक्षा देकर देश के युवकों को मृत्युञ्जयी बनाने वाले नेता को सरकार भला कैसे छोड़ सकती थी। एक दिन जब वे सो रहे थे, पुलिस उनके घर में घुस आयी और उन्हें ले जाकर हाजत में बन्द कर दिया। पर भगवान् की इच्छा को कौन जानता है! इष्ट में अनिष्ट और अनिष्ट में इष्ट होते देर नहीं लगती। उनका जेल जाना उनके लिए बड़ा शुभ साबित हुआ। वहाँ उनके ऊपर एक दिव्य ज्योति बरस पड़ी। उन्हें वहाँ आदेश मिला कि भारत के सांस्कृतिक विकास के लिए तप करें। फिर से भारत-भूमि में वह ज्योति जगावें जो संसार के अन्धकार को दूर करने में समर्थ हो। उसे ऐसी शान्ति प्रदान करें कि जो समस्या यूरोप हल नहीं कर सका है उसे वे हल करने में सफल हों। इसी उद्देश्य की पूर्ति में वे अपनी सारी शक्ति लगा दें।

देशबन्धु श्री चित्तरञ्जन दास के अथक परिश्रम से श्रीअरविन्द जेल से मुक्त हो गये और उसके कुछ दिन बाद ही पॉण्डिचेरी जाकर साधना-सागर में निमग्न हो गये।

दुनिया की नज़र में श्रीअरविन्द सदा ही एक पहेली बने रहे। भला इंग्लैण्ड में रहा-सहा, पढ़ा-लिखा कोई युवक योगी हो सकता है! यह भी क्या सम्भव है? यदि वे साधना-सागर में न कूदते तो पा सकते थे हम वह रत्न जिसका मूल्य जब दुनिया समझेगी तो सौ मुख से उनका यशोगान करेगी। यदि वे योग-साधना न करते तो हमारे दिग्गज नेताओं की संख्या में एक की और वृद्धि हो जाती, किन्तु क्या पा सकता था भारत ऋषि और त्रिकालदर्शी श्रीअरविन्द को, युगद्रष्टा और युगस्रष्टा श्रीअरविन्द को?...

योग हमें वह शक्ति प्रदान करता है जिससे हम काल को भी ललकारने में समर्थ होते हैं। पाँच वर्ष के प्रह्लाद में वह शक्ति कहाँ से आ गयी जिससे कि वह हाथी से भी भिड़ने में नहीं हिचका! हम लोग अदना-सी विपत्ति की घण्टी बजते ही घबरा कर पानी हो जाते हैं। क्यों? इसलिए कि जूझने की शक्ति नहीं है। अपने-आपको दीन-दुर्बल माने बैठे हैं। और इसी कारण दुनिया भयावह दिखायी देती है। योग से भय करने का एक कारण भी है। योग का नाम लेते ही हमारी आँखों के आगे जो चित्र आकर खड़ा हो जाता है वह है धूनी जलाना, भभूत लगाना, फल-फूल खाकर दिन बिताना और झोली लेकर दर-दर भीख माँगना। यह योग नहीं, यह रोग है।

श्रीअरविन्द का योग संसार से भागने की नहीं, संसार से जम कर जूझने की शिक्षा देता है। वे कहते हैं कि करो सब कुछ पर भगवान् के होकर रहो, भगवान् के होकर करो। भगवान् को पराया नहीं, अपना समझो। ध्रुव की तरह महत् प्रयासी और महत्त्वाकांक्षी बनो। यदि तुम चाहो तो तुम भी ध्रुव-प्रह्लाद जैसे वीर बन सकते हो। अभिमन्यु की तरह जीवन-युद्ध में खड़े होकर काल से काल बन कर लड़ सकते हो। तुम्हारी कीर्ति भी उन्हीं की तरह अक्षय हो सकती है। यदि अभी से तुम्हारे पग ठीक रास्ते पर नहीं पड़े तो जीवन में कुछ भी नहीं कर सकोगे।

—नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

श्रीअरविन्द ने अपने लेख "ऐतिहासिक संस्कार" में कुछ ऐसे वाक्य लिखे हैं जो स्वयं उन पर भी लागू होते हैं...

"ऐसे काल होते हैं जब मात्र एक व्यक्ति एक युग अथवा एक आन्दोलन के स्वभाव को केवल अपने अस्तित्व द्वारा चरितार्थ करने का आश्वासन देता है।"

बिखरे पन्ने

(देशबन्धु श्री चित्तरञ्जन दास की भांजी द्वारा लिखित)

स्मृति-पुस्तिका के पृष्ठ पलट कर, बहुत पीछे छोड़ आये अपने ही जीवन की घटनाओं को पुनः पढ़ना किसे नहीं भाता? चाहे महाज्ञानी हो या मूर्ख, सभी इससे सुख पाते हैं। याद करने पर एक मीठी-सी गुदगुदी महसूस होती है। स्मृति-पुस्तिका कितनी ही जीर्ण-शीर्ण क्यों न हो, अगर उसके पृष्ठों पर एक भी ऐसी घटना हो जो स्वर्णाक्षरों में लिखने-योग्य हो तो वही जीवन-पथ का पाथेय बन जाती है। मेरी स्मृति-पुस्तिका ऐसी ही कुछ घटनाओं को अपने हृदय में सँजो कर धन्य हो गयी है।

वह था बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन का युग। १९०५ में जब लॉर्ड कर्ज़न ने बंग-भंग की घोषणा की, देश में चाञ्चल्य की लहर दौड़ गयी —जगह-जगह विदेशी वस्तुओं की होली जल उठी... सड़क-सड़क पर जुलूस निकलने लगे... कण्ठ-कण्ठ में देश-प्रेम के गीत थिरक उठे। हम बच्चे ही थे, फिर भी जुलूस का गान सुनते ही हम उनके स्वर में स्वर मिला पूरे ज़ोर से गा उठते—'आज मिलें माँ की पुकार से'... 'शिथिल हुआ अब बन्ध हमारा'। जुलूस का नारा सुनते ही घर की बालिकाएँ, वधुएँ, गृहिणियाँ दरवाज़े-खिड़कियाँ खोल झाँकने लग जातीं... किशोर व युवक उल्लसित हो घर से निकल पड़ते। उस समय के युवक दूसरी मिट्टी के बने थे। वे थे निडर, निर्भय, चिन्ताओं से मुक्त। जन्म-मृत्यु की कोई परवाह नहीं। उनकी नस-नस में दौड़ रहा था जोश का ख़ून। देश को अर्पित था उनका सर्वस्व।

याद है, सोलह अगस्त—राखी का दिन। किसी के घर अँगीठी नहीं जली। घर-घर से लड़के-लड़कियाँ राखी लेकर निकल पड़े... परिचित, अपरिचित, हिन्दू-मुसलमान आपस में राखी बाँध एक हो गये—न जात-पाँत, न भेद-भाव।

उन दिनों नाटोर के महाराजा जगदीन्द्रनाथ सपरिवार हमारे यहाँ पुरुलिया में रह रहे थे। नाटोर के राज-परिवार के साथ हमारे परिवार की काफ़ी घनिष्ठता थी। उनकी पत्नी को हम मासीजी कहते और वे भी हमसे सगी मासी की तरह ही स्नेह करतीं। उनके बच्चे थे हमारे खेल के साथी। आज

जो नाटोर के महाराजा हैं उन्हें मैं मुनु कह कर बुलाती थी। उम्र में वे मुझसे छोटे ही हैं।

एक दिन मुनु ने गम्भीर होकर कहा था—"अब हमें स्वदेशी वाला खेल बन्द करना ही पड़ेगा। यदि बन्द न किया तो पुलिस हमें पकड़ ले जायेगी।"

मुझे आश्चर्य हुआ—"ऐसा क्यों?"

उसी गम्भीर मुद्रा में वह कहने लगा, "जानती नहीं? जो स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेते थे न, उन सभी को पुलिस पकड़ ले गयी है।" यह सुन हृदय को ठेस पहुँची।

उन दिनों तो यह रोज़मर्रा की बात थी। रोज़ ही हम कोई-न-कोई घटना सुनते—कभी लाट साहब की गाड़ी की राह में बम रखा गया... तो कभी मुज़फ़्फ़रपुर में किंग्स फ़ोर्ड को मारने की कोशिश की गयी...। बंगाल के उन पागल देशप्रेमी वीर युवकों की बात भी सुनते थे जो फाँसी के समय भी निर्भय हो माँ की वन्दना करते रहे, जिन्होंने फाँसी के मंच पर चढ़ कर जीवन का जयगान गाया था। हमारे किशोर मन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। बार-बार मुनु से पूछा था—क्या स्वदेशी आन्दोलन किसी प्रकार चल नहीं सकता? आज जब उसके चेहरे के गम्भीर भाव का स्मरण हो आता है तो हँसी आ जाती है। किंग्स फ़ोर्ड को लेकर हम प्रायः ही एक व्यंग्य-गीत गाते। अंग्रेज़ी-बंगला-हिन्दी की खिचड़ी भाषा के कारण आज भी उसकी कुछ पंक्तियाँ याद हैं:

माई नेम इज़ किंग्स फ़र्द,
आई एम ए ग्रेट मर्द।

कुछ ही दिनों बाद हम अपने मामा (स्वर्गीय श्री देशबन्धु चित्तरञ्जन दास) के यहाँ कलकत्ते चले आये। उन दिनों उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनका अपना परिवार बहुत बड़ा न था पर उनके पोष्य जनों की संख्या कुछ कम नहीं थी। कुछ तो ऐसे थे जो वहीं रह कर पढ़ाई करते, वे उनके गाँव के रिश्तेदारों में से थे। उन दिनों प्रायः प्रत्येक शहरी गृहस्थ परिवारों में ऐसे कुछ लोग रहते ही थे। भिखारी और अतिथि को भूखे ही लौटा देना अमंगलकारी माना जाता था। मुझे याद है मेरी नानीजी (चित्तरञ्जन की माँ) सबको खिलाने-पिलाने और नौकर-चाकरों को परोस देने के बाद ही स्वयं खाने बैठती थीं।

हमारे घर उन दिनों स्वलेखन ख़ूब चला करता। मामीजी (चित्तरञ्जन की पत्नी) के हाथ से ख़ूब लेख निकलते। प्रायः शाम को और कभी-कभी दोपहर को भी ऐसी बैठकें हुआ करतीं। छोटे होने के कारण हम उन बैठकों में नहीं जा पाते थे, फिर भी लिख जाने के बाद घर में जो आलोचनाएँ होतीं उनसे हमें कुछ जानना बाक़ी न रह जाता।

एक दिन अकस्मात् स्वर्गीय ब्रह्मबान्धव उपाध्याय की आत्मा ने आकर मामाजी से अनुरोध किया कि वे श्रीअरविन्द के पक्ष का समर्थन करें। उन दिनों अलीपुर बम-केस वाला मुक़द्दमा चल रहा था।

मामाजी तो चाहते ही थे कि श्रीअरविन्द का पक्ष लिया जाये। ख़ासकर उस समय जब क़ानून-विशारद श्री व्योमकेश चक्रवर्ती ने उनका पक्ष छोड़ दिया। किन्तु अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए ऐसा करने का साहस उन्हें नहीं हो पा रहा था। इतने जनों का पेट भरना कोई मामूली बात नहीं थी। इस समय वे स्वयं पिता के ऋण से बुरी तरह दबे हुए थे।

फिर भी ऐसा अनूठा अनुरोध उनके मन को छू गया। मामाजी ने श्रीअरविन्द का केस अपने हाथ में ले लिया। आज भी वह दृश्य आँखों के सामने साकार हो उठता है—चिन्तामग्न, पीछे की ओर हाथ-पर-हाथ रखे लम्बे बरामदे में वे चक्कर लगा रहे हैं।

मामाजी की मातृ-भक्ति असाधारण थी। माँ की बात थी उनके लिए वेदवाक्य। किसी भी कठिन मुक़द्दमे की पैरवी के लिए कोर्ट जाते वक़्त वे माँ के चरण छू कर जाते। माँ के प्रति सभी बच्चों के मन में प्यार व श्रद्धा होती है—पर उनकी भक्ति कुछ निराली ही थी। कितने ही ज़रूरी काम में व्यस्त क्यों न हों, यदि नानीजी बुला लेतीं तो वे फ़ौरन उठ आते, उनकी बात सुनते, पूरी करते या करने की व्यवस्था कर देते; उसके बाद ही अपने काम में जुटते। हमने उन्हें कई बार कठिन काम में माँ और नानीजी से सलाह करते देखा है। मेरी माँ उनकी बड़ी बहन थीं। वे उन्हें भी माँ के समान ही श्रद्धा-भक्ति से देखते थे। हमने सुना कि माँ और नानाजी के आश्वासन के बल पर ही वे बिना फ़ीस लिये श्रीअरविन्द के पक्ष का समर्थन करने को सानन्द तैयार हो गये थे। नानी ने उनसे कहा था—"तू इतना सोच क्यों करता है चित्त? जब तेरा मन चाहता ही है तब तू इस काम को स्वीकार कर ले। यह तो दैवी निर्देश है; काम भी स्वयं

वही करा लेगा।"

नानीजी की बात अक्षरशः सच निकली। इस मामले के बाद मामाजी पर तो लक्ष्मी ने दोनों हाथों से धन की वर्षा शुरू कर दी।

बड़े मामाजी के साथ छोटे मामाजी, वसन्तकुमार दास, भी अदालत जाते। साथ में बन्दियों के लिए घर से नाश्ता भी ले जाते। वे अपनी मरज़ी से रोज़ तरह-तरह की चीज़ें बनवाते। हम दिन-भर व्यग्रता से छोटे मामाजी का इन्तज़ार करते, कारण वे हमें अदालत की तरह-तरह की बातें सुनाते। उन्हीं दिनों हमने सुना था, बन्दियों में से एक ने, शायद वे उल्लासकर ही थे, कहा था—"भाई, मैं द्वीपान्तर टीपान्तर नहीं चाहता। काला पानी का अर्थ है बीस साल के लिए छुट्टी। इससे तो अच्छा है कि मुझे फाँसी पर लटका दिया जाये जिससे जल्दी ही जन्म लेकर पुनः माँ की मुक्ति के लिए काम कर सकूँ।" और भी कई बातें सुनीं—नरेन गोस्वामी की हत्या के लिए रिवॉल्वर कटहल के अन्दर छिपा कर भेजा गया। खुदीराम की मृत आत्मा कनाई लाल को रिवॉल्वर दे गयी। ऐसी ही अनेक बातें जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं।

इस मुक़द्दमे के लिए मामाजी को हमने जी-तोड़ मेहनत करते देखा। नहाने-खाने तक का उन्हें समय नहीं मिलता था। बन्दियों को निर्दोष प्रमाणित करने की योजना बनाने में वे रात-रात भर मोटे-मोटे क़ानूनी पोथों में उलझे रहते।

दिन बीतते देर न लगी। फ़ैसले का दिन आ गया। मामाजी अदालत जाते वक़्त कह गये—"जिन बन्दियों को छोड़ दिया जायेगा उन्हें मैं अपने साथ घर ले आऊँगा। यहीं वे नहायेंगे, खायेंगे, तब अपने-अपने घर लौटेंगे। तुम खाना तैयार रखना माँ!"

उस दिन क्या-क्या बना था आज मुझे याद नहीं। पर इतना अवश्य याद है कि नानी, माँ, मासी सभी उत्फुल्ल होकर काम में जुट गयी थीं।

थोड़ी देर बाद ही छोटे मामाजी अदालत से लौट आये। सीढ़ियों पर से ही चिल्लाने लगे—"माँ, माँ, श्रीअरविन्द बाबू को छोड़ दिया गया है। खाना तैयार है न?" उनके स्वर में हर्ष भरा था। नानीजी के उत्तर के लिए वे रुके नहीं। तुरत ही नीचे मुंशी से बोले—"कालिपद बाबू, आप जल्दी बाज़ार चले जायें और कुछ धोतियाँ, चादर, बनियान, साबुन, तेल

आदि ख़रीद लायें। दादा ने कहलाया है। वे तो बस आ ही गये समझो।"

सभी आ पहुँचे। घर आनन्द से भर गया। तालाब में वे नहाने गये। कितनी ही देर तक मुक्त आकाश के नीचे आनन्दविभोर हो नहाते रहे। पर श्रीअरविन्द नहाने गये मामाजी के ग़ुसलख़ाने में।

ऊपर, बरामदे में खाने की व्यवस्था की गयी। सभी एक साथ पंक्ति में बैठे। श्रीअरविन्द के लिए अलग जगह की गयी थी। खाते समय फिर आनन्द व किलकारी की लहर उठी। जेल में उन्हें जिस बर्तन में खाना दिया जाता था वह नीचे से सपाट न होकर डोंगी की तरह था। खाते वक़्त उसे सीधा रखने के लिए बायें हाथ से पकड़े रहना पड़ता था। हमारे घर खाना खाते समय आदतन नलिनी बाबू (श्रद्धेय नलिनीकान्त गुप्त) ने बायें हाथ से थाल पकड़ लिया। फिर क्या था, मुक्त हँसी से घर गूँज उठा। वैसी दिल-खोल हँसी शायद ही कहीं देखने को मिले।

नानी, माँ, मौसी स्वयं उन्हें परोस रही थीं। हम भी कभी पानी, कभी नमक, नीबू परोसते-परोसते सोच रहे थे, "ख़ूब काम कर लिया।" इतने हो-हल्ले के बीच भी श्रीअरविन्द गम्भीर, शान्त ही दिखायी दिये।

इसके बाद उन्हें किस तरह घर पहुँचाया गया यह याद नहीं। हाँ, इतना ज़रूर याद है—श्रीअरविन्द के चले जाने के बाद माँ ने किसी से कहा था, "देखी थीं तुमने श्रीअरविन्द बाबू की आँखें? देखने से ही लगता है कि वे इस धरती के वासी नहीं हैं।"

उस समय के श्रीअरविन्द का दुबला-सा श्यामवर्ण रूप ही मानस-पटल पर अंकित था। इसके २३ वर्ष बाद १९३२ के अगस्त में जब उन्होंने करुणा कर पुनः दर्शन दिये तब मैं स्तम्भित रह गयी। कितना उज्ज्वल वर्ण, कैसी गौर देह-कान्ति! बार-बार लगता, यह क्या? क्या यह भी सम्भव है?

जीवन के प्रभात में जिन्होंने दुर्लभ दर्शन दे मुझे कृतार्थ किया था, यौवन की सन्ध्या में उन्होंने ही असीम अनुकम्पा कर अपने चरणों में शरण दी और आज भी मेरी जीवन-नैया खे रहे हैं।

प्रणाम! उन्हें कोटि-कोटि प्रणाम!! —अरुणा देवी

पुनश्च : और यह रहा श्रीमती अरुणा देवी के मामाजी श्री चित्तरञ्जन दास का वह ऐतिहासिक वक्तव्य जो उन्होंने अलीपुर बम-काण्ड के मुक़द्दमे

के अन्त में श्रीअरविन्द के पक्ष में बोलते हुए जज बीचक्राफ़्ट के सामने दिया था, जो आज भी सच्चे भारतवासी के हृदय में मधु उँडेल देता है :

"इस वाद-विवाद के नीरव हो जाने के बहुत बाद, इस संघर्ष और उथल-पुथल के शान्त हो जाने के बहुत बाद, इनके चले जाने के बहुत बाद भी इन्हें राष्ट्रीयता के गायक, मसीहा और मानवता के प्रेमी के रूप में याद किया जायेगा। इनके देहान्त के बहुत बाद इनके शब्द केवल भारत में ही नहीं, देशों और समुद्रों के पार गूँजा करेंगे। मेरा दावा है कि इस स्थिति का मनुष्य केवल आपकी अदालत के सामने नहीं, विश्व-इतिहास की अदालत के सामने खड़ा है।"

सबसे अच्छी जीवनी

एक विद्वान् थे। वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे। अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ते रहते थे। साधु-सन्तों की संगति करते थे। एक महात्मा के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी, भक्ति थी। वे महात्मा बहुत पहुँचे हुए थे। ईश्वर के प्रति उनका समर्पण विलक्षण था। वास्तव में वे अपने प्रभु के साथ एकाकार हो गये थे।

एक दिन एक मित्र उन विद्वान् के पास आये। बातचीत में विद्वान् ने उन महात्मा का उल्लेख किया और उनकी बड़ी प्रशंसा की।

सुन कर मित्र ने कहा, "जिनसे आप इतने प्रभावित हैं, उनकी जीवनी आप क्यों नहीं लिख देते? आप इतने विद्वान् हैं, जो लिखेंगे, वह उत्तम होगा। पाठक उसे पढ़ेंगे और उससे अपने जीवन में शिक्षा ग्रहण करेंगे।"

विद्वान् ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। मैं महात्माजी की जीवनी लिख रहा हूँ।" आनन्दित होकर मित्र ने कहा, "वाह, यह तो आपने बड़ी अच्छी ख़बर दी। अच्छा, यह बताइये कि जीवनी कब तक पूरी हो जायेगी?"

विद्वान् ने कुछ देर चुप रह कर गम्भीर वाणी में कहा, "मित्र, मैं क़लम से काग़ज़ पर जीवनी नहीं लिख रहा हूँ। सबसे अच्छी जीवनी तो जीवन में लिखी जाती है। मैं उसी के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ।"

मित्र उनके सम्मुख नतमस्तक हो आगे कुछ नहीं बोल पाये।

'जीवन साहित्य' से साभार —यशपाल जैन

श्रीअरविन्द के ग्रन्थों का अध्ययन

मधुर माँ, आपकी और श्रीअरविन्द की पुस्तकों को किस तरह पढ़ा जाये ताकि वे केवल मन के द्वारा समझ में आने की जगह हमारी चेतना में प्रवेश कर जायें?

मेरी किताबें पढ़ना मुश्किल नहीं है क्योंकि वे बहुत सरल, लगभग बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी हैं। उनसे लाभ उठाने के लिए इतना काफ़ी है कि उन्हें ध्यान और एकाग्रता के साथ, आन्तरिक सद्‌भावना की वृत्ति से, उनमें जो शिक्षा दी गयी है उसे ग्रहण करने और जीवन में उतारने की इच्छा से पढ़ा जाये।

श्रीअरविन्द ने जो लिखा है उसे समझना कुछ ज़्यादा कठिन है क्योंकि अभिव्यञ्जना बहुत ज़्यादा बौद्धिक है और भाषा बहुत अधिक साहित्यिक और दार्शनिक। मस्तिष्क को उनकी चीज़ ठीक तरह समझने के लिए तैयारी की ज़रूरत होती है और साधारणतः तैयारी में समय लगता है। अगर कोई विशेष प्रतिभावाला है जिसमें सहजात अन्तर्भास की क्षमता हो तो और बात है।

बहरहाल, मैं हमेशा यह सलाह देती हूँ कि एक बार में **थोड़ा-सा** पढ़ो, मन को जितना शान्त रख सकते हो रखो, समझने की कोशिश न करो, दिमाग़ को जहाँ तक हो सके मौन रखो, और जो **तुम पढ़ रहे हो उसमें जो शक्ति है उसे अपने अन्दर गहराइयों में प्रवेश करने दो**। शान्त-स्थिरता और नीरवता में ग्रहण की गयी यह शक्ति अपनी ज्योति का काम करेगी और, अगर ज़रूरत हुई तो, मस्तिष्क में इसे समझने के लिए आवश्यक कोषाणु पैदा करेगी। इस तरह, जब तुम उसी चीज़ को कुछ महीनों के बाद दोबारा पढ़ते हो तो तुम्हें लगता है कि उसमें व्यक्त किया गया विचार बहुत ज़्यादा स्पष्ट और निकट, और कभी-कभी बहुत परिचित हो गया है।

ज़्यादा अच्छा यह है कि नियमित रूप से पढ़ो, रोज़ थोड़ा-सा पढ़ो और हो सके तो एक निश्चित समय पर; इससे मस्तिष्क के लिए ग्रहण करना आसान हो जाता है। २.११.१९५९

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानसिक जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा

करने आये थे और उन्होंने इस अभिव्यक्ति की घोषणा ही नहीं की बल्कि अंशतः अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और अपने उदाहरण के द्वारा यह बतलाया कि उसे अभिव्यक्त करने के लिए क्या करना चाहिये। सबसे अच्छी बात जो हम कर सकते हैं वह यह है: उन्होंने हमसे जो कुछ कहा है उसका अध्ययन करें और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

यह चीज़ जीवन को उसका असली अर्थ देती है और हमें सभी बाधाओं पर विजय पाने में सहायता देगी।

हम नयी सृष्टि के लिए जियें तो हम युवा और प्रगतिशील रह कर बलवान्, और अधिक बलवान् होते जायेंगे। ३०.१.१९७२

... ज़रूरी बात यह है कि श्रीअरविन्द की चीज़ें विद्यार्थियों के सामने चबायी हुई और आधी जीर्ण अवस्था में न आयें। अध्यापक मूल्यांकन के सभी तत्त्व बता सकता है, लेकिन बच्चों का सीधा सम्पर्क होना चाहिये। उन्हें बोध का आनन्द मिलना चाहिये। अध्यापक को इस बात का ख़याल रखना चाहिये कि वह श्रीअरविन्द की महान् चेतना और विद्यार्थी के मन के बीच परदा बन बाधक न हो।

*

इस बात की सावधानी बरतनी चाहिये कि श्रीअरविन्द की चीज़ बच्चों के पास तब आये जब उन्हें आवश्यक जानकारी मिल चुकी हो और तैयारी करवा दी गयी हो, परन्तु श्रीअरविन्द की चीज़ उनकी पूरी ताज़गी और शक्ति के साथ आनी चाहिये।

*

श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ो और सावधानी से अपने अन्दर जितनी गहराई में जा सकते हो जाओ। ४.७.१९६९

*

श्रीअरविन्द ने **सभी विषयों** पर जो कुछ कहा है उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से तुम आसानी से इस संसार की सभी चीज़ों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हो।

—**'श्रीमातृवाणी'** से संकलित

दैनन्दिनी

अगस्त

१. चैत्यीकरण का अर्थ है, निम्नतर प्रकृति का ऐसा परिवर्तन जो मन में सम्यक् दृष्टि, प्राण में समुचित आवेग और बोध, शरीर में यथार्थ क्रिया और गति तथा अभ्यास ले आता है—ये सभी भगवान् की ओर मुड़े होते हैं, सबका आधार होता है प्रेम, पूजा-भाव और भक्ति...।

२. सतत और सच्ची अभीप्सा का होना, और एकमात्र भगवान् के अभिमुख होने का संकल्प करना ही चैत्य पुरुष को सामने की ओर ले आने का सबसे उत्तम मार्ग है।

३. आत्मा ठीक वही चीज़ नहीं है जो चैत्य पुरुष है—आत्मा वह पुरुष है जो सबमें एक है, स्थिर, विस्तृत, सदा शान्तिमय, सर्वदा मुक्त। चैत्य पुरुष हमारे अन्दर की वह अन्तरात्मा है जो जीवन का अनुभव लेता है और विकसनशील मन, प्राण और शरीर के साथ-साथ विकसित होता रहता है।

४. भगवान् के प्रति प्रेम और भक्ति चैत्य स्वभाव का केन्द्रीय भाव है...।

५. घनीभूत स्थिरता और समर्पण से भरपूर अभीप्सा के रूप में विद्यमान अग्नि, निःसन्देह, वह पहली चीज़ है जिसे हृदय में प्रज्वलित करना चाहिये।

६. सत्य के अभिव्यक्त होने के लिए ऊर्ध्वमुखी गति और निश्चल-नीरवता का होना अनिवार्य है।

७. आधार वह है जिसमें चेतना इस समय समायी हुई है; अर्थात्, मन-प्राण-शरीर।

८. रूपान्तर का अर्थ है कि उच्चतर चेतना या प्रकृति को मन, प्राण और शरीर में उतार लाया जाये और वह निम्नतर का स्थान ग्रहण कर ले।

९. जीवन के तथ्यों को जानना ही होगा, और हमें उन्हें स्वतन्त्र और निष्पक्ष मन से सीखना होगा।

१०. जगत् में क्या हो रहा है यह यौगिक जीवन के सिद्धान्त के विरुद्ध

नहीं है—अयौगिक बात है इनमें आसक्त हो जाना, इनके बिना न रह सकना, प्रमुख महत्त्व की वस्तु के रूप में उनका विचार करना।

११. योग का मार्ग सदा ही आन्तरिक और बाह्य कठिनाइयों से अवरुद्ध होता है और साधक को उनका सामना करने के लिए शान्त, सुदृढ़ और ठोस बल का विकास करना होता है।

१२. हृदय को ही केन्द्र बनाना होगा और भक्ति तथा अभीप्सा के द्वारा तुम्हें चैत्य पुरुष को सामने लाकर भागवत शक्ति के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना होगा।

१३. योग्यता और अयोग्यता का जहाँ तक प्रश्न है, कोई भी मनुष्य इस योग के लिए पूर्णतः योग्य नहीं है; मनुष्य को अभीप्सा, अभ्यास, सच्चाई और समर्पण की सहायता से योग्य बनना पड़ता है।

१४. जो मनुष्य यह चाहता है कि उसका योग शान्ति या हर्ष का पथ हो उसे अपने बाहरी मन और भावनात्मक प्रकृति के बदले अपनी अन्तरात्मा में निवास करने के लिए तैयार होना चाहिये।

१५. संकल्प का आवेगों पर वैसा ही प्रभुत्व होना चाहिये जैसा कि विचारों पर। बहुत से लोगों को विचार को रोकने की अपेक्षा आवेग को नियन्त्रित करना अधिक आसान लगता है।

१६. तुम्हें विवेक का विकास करना चाहिये जिससे प्राण के लिए तुम्हें धोख़े में रखना असम्भव हो जाये।

१७. शान्ति रखना सदा ही अच्छा होता है।

१८. विषाद बहुत बुरा होता है क्योंकि वह चेतना को नीचे ले आता है, उसकी ऊर्जा को ख़र्च कर देता है तथा उसे विरोधी शक्तियों की ओर खोल देता है।

१९. स्वयं उदासी में ग़लत चीज़ को सुधारने की शक्ति नहीं है, यह शक्ति दृढ़, शान्त और अडिग संकल्प में है।

२०. भगवान् के लिए या भगवान् की भक्ति के लिए स्पृहा करना एकमात्र ऐसी कामना है जो व्यक्ति को अन्य सब कामनाओं से मुक्त कर सकती है...।

२१. योग की माँग है प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करना, प्रकृति की अधीनता स्वीकार करना नहीं।

२२. कामना और ईर्ष्या को चेतना से बाहर निकाल फेंकना होगा—उनके साथ व्यवहार करने का दूसरा कोई तरीक़ा नहीं है।

२३. ...प्राण में सच्चा संकल्प स्थापित करो; अपनी साधना के साथ व्यक्तिगत कामनाओं और माँगों को, स्वार्थपरता और मिथ्यात्व को मत मिलने दो; केवल तभी तुम्हारा प्राण साधना के योग्य बन सकेगा। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा प्रयास सफल हो तो उसे सर्वदा अधिक शुद्ध, अधिक नियमित और अधिक स्थायी होते जाना चाहिये। यदि तुम सच्चाई के साथ अभ्यास करो तो अपने लिए आवश्यक सहायता तुम प्राप्त करोगे।

२४. ...तुम स्वयं सर्वदा दो वस्तुओं को बनाये रखने की बात याद रखो—वे हैं निश्चलता और विश्वास।

२५. चरम महत्त्व की एकमात्र वस्तु है तुम्हारी साधना और तुम्हारा आध्यात्मिक विकास। बस, किसी चीज़ को उसे छूने या बिगाड़ने मत दो।

२६. मनुष्य को अपना आधार भगवान् पर रखना सीखना चाहिये...।

२७. निष्ठावान् बनो, तुम्हारी विजय होगी।

२८. ...शारीरिक व्यायाम और नियमित शारीरिक प्रवृत्ति शरीर में किसी तामसिक अवस्था को प्रबल होने से हमेशा ही रोक सकती है।

२९. कर्म भगवान् के प्रति आत्मोत्सर्ग का एक साधन है, किन्तु इसे उस आवश्यक आन्तर चेतना के साथ करना होगा जिसमें बाह्य प्राणिक और भौतिक चेतना भी हिस्सा बँटाती हो।

३०. स्थूल सत्ता अपने अधिकतम भाग में अवचेतन होती है—अपनी जाग्रत् चेतना के लिए यह सूक्ष्म भागों पर आधार रखती है।

३१. कठिनाई से भागने में यही तो असुविधा है—यह व्यक्ति के पीछे दौड़ती है—सच पूछो तो वह इसे अपने साथ लिये फिरता है, क्योंकि कठिनाई वास्तव में अन्दर है, बाहर नहीं। बाह्य परिस्थितियाँ तो केवल प्रकट होने का अवसर देती हैं और जब तक अन्दर की कठिनाई जीत नहीं ली जाती तब तक परिस्थितियाँ किसी-न-किसी प्रकार सदैव सिर उठाती रहेंगी।

'श्रीअरविन्द के पत्र' भाग ३ से

देवाधिराज

एक बार की बात है, स्वर्ग में देवता निष्क्रिय से दीख रहे थे। देवता तो अपने-आपमें पूर्ण हैं, उनके जीवन में कहाँ दुःख और कहाँ कष्ट? वह तो धरतीवासियों के आर्तनाद, प्रार्थना इत्यादि ही उनके लोक में हलचल पैदा करते हैं, क्योंकि अगर कोई सच्ची निष्ठा के साथ देवता को पुकारता है तो वे धरती पर उतरने के लिए तैयार हो जाते हैं; इसी कारण निरन्तर देवताओं का आना-जाना लगा ही रहता है। लेकिन कुछ दिनों से स्वर्ग में न तो आर्तनाद आ रहे थे, न प्रार्थनाओं की टेर सुनायी दे रही थी।

देवता भी आश्चर्य में पड़ गये और सोचने लगे कि आख़िर मामला क्या है? अन्त में सबने मिल कर यही निश्चय किया कि इस बार अनामन्त्रित ही वे धरती पर जाकर वहाँ के लोगों की हालत देखेंगे।

अगले ही दिन देवता सूक्ष्म रूप धारण कर धरती पर उतरे।

वहाँ पहुँच कर सभी आश्चर्य में पड़ गये, एक साथ बोल उठे—"अरे, कहाँ पहुँच गये हम!" क्षण-भर के बाद नारद बोले—"ओह! पृथ्वी ही है यह, लेकिन हमारी सुपरिचित दीना-हीना, लावण्यरहिता पृथ्वी नहीं।"

आश्चर्य की मूर्ति बने वे इधर-उधर घूमने लगे। उनकी आँखों के सामने झूम रही थी हरी-भरी वसुन्धरा। उसका अपूर्व सौन्दर्य देख वरुणदेव तो आनन्द से उन्मत्त हो उठे। वे तो यहाँ अधिकतर किसानों की हृदयभेदी करुण प्रार्थना सुन कर सूखी धरती के हृदय की प्यास बुझाने आया करते थे। आज तो सारी धरती, उसके सभी प्राणी, पेड़-पौधे—चर-अचर—सभी रूपान्तरित से दीख रहे थे। नदियाँ मस्ती से बह रही थीं, किसान खेतों में, नगरवासी नगरों में, बालक विद्यालयों में, पशु वनों में, पक्षी नीड़ों में, अर्थात् सभी अपने-अपने उचित स्थान पर आनन्दपूर्वक, उत्साह के साथ काम में लगे हुए थे।

धरती का यह परिवर्तन देख सभी देवता आश्चर्य में डूबे हुए थे। अचानक वे किसी को देख ठगे से खड़े रह गये। उनमें से हर एक ने एक सुदर्शन पुरुष को कभी इधर तो कभी उधर देखा। उस युवक ने भी देवताओं को देख दूर से ही सादर प्रणाम किया। देवताओं ने सोचा—अरे! हमारे जैसा यह कौन है? पहले तो हमने इसे कभी यहाँ नहीं देखा! पृथ्वी

के लोगों के लिए तो हम अदृश्य हैं, यह ज़रूर देवजाति का पुरुष होगा जो इस पल यहाँ तो दूसरे ही पल वहाँ दिखायी देता है। हमारे जैसा दीखने पर भी हमसे अपरिचित!!

नारद के धैर्य का बाँध टूट रहा था, उन्होंने घोषणा कर दी—"हम सब उस पुरुष के पास जाकर स्वयं उसका परिचय प्राप्त करें। देखो, अभी वह उस खेत के लहलहाते पौधों का निरीक्षण कर रहा है, वहाँ से अदृश्य होने से पहले हम वहाँ चलें।"

अगले ही क्षण देवता वहाँ उपस्थित थे। देवताओं को सामने देख युवक ने उन्हें दोबारा प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए शिवजी ने पूछा—"कौन हो तुम हे सुदर्शन युवक, देवजाति के लगते हो, लेकिन सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि स्वर्ग में तुम्हारे दर्शन कभी नहीं हुए!"

एक बार फिर देवताओं को नमस्कार कर उस पुरुष ने कहा—"देवगण! मैं आप लोगों की कोटि का स्वर्ग में रहने वाला देवता नहीं हूँ, धरती माता की कोख में मेरा वास है। जब-जब धरतीवासी मुझे पुकारते हैं मैं उपस्थित हो जाता हूँ—हरे-भरे लहराते खेतों में, फलों से लदे वृक्षों में, भव्य प्रासादों में, कुटीरों में, ग्रन्थों में, काव्यों में—निर्माण के प्रत्येक कार्य में मेरा ही वास है, लेकिन मेरा सौन्दर्य सबसे अधिक निखरता है पसीने की बूँदों में—मैं हूँ परिश्रम या उद्यम।"

परिश्रम-देवता को नमस्कार कर देवताओं ने कहा—"तुम ही सचमुच पृथ्वीवासियों के देवाधिराज हो। तुम्हारे बिना लोग अकर्मण्य, निष्प्राण होते हैं, तुम साथ रहो तो वे सर्वसमर्थ बन जाते हैं। तुम्हीं सचमुच पृथ्वीवासियों का सच्चा लावण्य, पारसमणि हो।"

"हे देवगण! तब तो मुझे वर दीजिये कि धरतीवासी अपने सच्चे सौन्दर्य को भुला न दें, यह कभी न भूलें कि वे इस परिश्रम-रूपी पारस के अधिकारी हैं जिसके स्पर्श से सीसा सोने में बदल जाता है।" उद्यमदेवता ने सिर झुका कर निवेदन किया।

और सभी देवताओं के वरद हस्त 'तथास्तु' में उठ गये।

—वन्दना

प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है।

—श्रीमाँ

मिट्टी की देह में

केवल 'देवत्व' को जागृत करने हेतु
उस परम ने परम का अंश-बीज बोया है।
अपनी रहस्यमयी लीला की संसिद्धि-हेतु
असंख्यों युगों से मिट्टी की इस देह में
परम का यह जादू-भरा खेल
इसीलिए है खेला जा रहा
कि खेल-खेल में सहसा मानव अनचले मार्गों को खोज ले।
कि खेल-खेल में अश्रुत वाणियों को सुन सके।
कि खेल-खेल में अदृश्य दृश्यों को देख ले।
कि खेल-खेल में अस्पृश्य तत्त्वों का स्पर्श कर ले।
कि खेल-खेल में अनछुई गहराइयों को छू ले।
जब तक मानव मन के कठोर पूर्वाग्रही विचारों
की तहें टूट न जातीं या
मानव मन के निम्न प्राण की क्षुद्र इच्छाएँ
भस्मीभूत होने ऊपर फूट न आतीं
तब तक कैसे हो सकती है यह सत्ता शान्त और नीरव?
शान्ति तथा नीरवता के पार्श्व में ही तो
छुपा हुआ है दिव्य गन्ध का यह सु'मन'
इसी सु'मन' के उर्वर जागरण-हेतु ही तो
युगों से मानव की अभंग अभीप्सा का
प्रयत्न धरती पर है चल रहा।
जिसके अरुणिम स्वर्णिम प्रकाश में,
उस परम को वह (मानव) है अभिव्यक्त कर रहा।
मानव में भगवान् की अभिव्यक्ति कोई खेल नहीं है।
जो हर क्षण शिशु बन कर परम प्रभु के साथ खेल खेल सकते हैं।
वे ही अपने अन्दर परम प्रभु की अभिव्यक्ति के
खेल में विजयी हो सकते हैं।

—डॉ. सुमन कोचर

पिछले जन्म की स्मृति

जब कोई मनुष्य अपना भौतिक शरीर छोड़ता है तो उसका सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म लोक में लगभग छह मास से तीन वर्ष तक रहता है। जब वह फिर से जन्म ले तो हो सकता है कि वह अपने सूक्ष्म शरीर के एक भाग को अपने साथ लेकर उस जन्म की स्मृति भी ले आये। लेकिन अगर सूक्ष्म शरीर और मानसिक शरीर विलीन हो जायें और चैत्य उसके बाद जन्म ले तो पिछले जन्म की स्मृति पाने के लिए व्यक्ति को अपने चैत्य के साथ सम्पर्क साधना होता है। वह अपने चैत्य के साथ सम्पर्क साध ले फिर भी उसे पूर्ण स्मृति तो न होगी क्योंकि चैत्य पिछले जन्मों के तत्त्व को ही, केवल उन घटनाओं की स्मृति को ही ले जाता है जिनका उसके विकास पर प्रभाव पड़ा है।

गीता का कहना है कि जब कोई मरता है तो उसका जीव उसके सारे जीवन के अनुभव उसी तरह लेता है जैसे हवा फूल की सुगन्ध को। वस्तुतः नये जीवन का निश्चय मृत्यु से पहले ही होता है। यह निश्चय तब नहीं होता जब चैत्य पुरुष चैत्य-लोक में विश्राम कर रहा हो। मृत्यु से ठीक पहले चैत्य तुम्हारे जीवन का हिसाब देखता है जैसे हम हिसाब का खाता देखते हैं। वह जीवन का जोड़-बाक़ी देखता है। इस बारे में भी माताजी ने एक सुन्दर उदाहरण दिया है। मान लो, तुम एक जीवन में राजा हो, तुम बहुत ज़्यादा जकड़े हुए हो और अपनी मरज़ी के अनुसार नहीं कर सकते। तुम अगले जन्म में अधिक स्वतन्त्र जीवन, साधारण जीवन बिताना चाहते हो, तो तुम एक साधारण परिवार में जन्म लेते और साधारण प्रगति करते हो। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण निश्चय मृत्यु के बाद नहीं, उसके समय लिये जाते हैं।

तो तुमको जानना चाहिये कि तुम अपनी प्रगति के लिये जो कुछ काम करते हो वह धरती पर भौतिक जीवन में ही किया जाता है। किसी गुरु की सहायता के बिना भौतिक जीवन की समाप्ति के बाद कोई काम या विकास नहीं होता। गुरु मृत्यु के बाद भी सहायता कर सकते हैं। वे व्यक्ति

को सहारा दे सकते हैं, उसके पुराने संस्कारों को मिटा सकते हैं और नया जन्म दे सकते हैं। जब मेरे एक परिचित की मृत्यु हुई तो माताजी ने मुझे बुलाया और मुझसे कहा, "मैंने इसकी उपलब्धि को पाँच-छह जीवन आगे बढ़ा दिया है। सामान्य रीति से उसे पाँचवे या छठे जीवन में उपलब्धि प्राप्त होती। मैंने चैत्य के उस भाग को, जिसे भगवान् के लिए अभीप्सा थी, अलग कर दिया और अन्य भागों को विलीन कर दिया। इसलिए अगले जन्म में ही इसे उपलब्धि हो जायेगी।"

इस प्रकार की सहायता केवल माताजी और श्रीअरविन्द जैसे गुरु ही दे सकते हैं। लेकिन हम भी उनके प्रति सम्पूर्ण समर्पण करके उस स्थिति तक पहुँचने की कोशिश कर सकते हैं। चूँकि योग समर्पण का मार्ग है इसलिए हमें भी उस स्थिति तक पहुँच सकना चाहिये। लेकिन एक फ़र्क होगा—हर एक की अभिव्यक्ति की राह अलग होगी। माताजी और श्रीअरविन्द की चेतना हर एक की चेतना के साथ, उसकी अभीप्सा और आवश्यकता के साथ मिल जायेगी। जैसे पानी और धूप हर पौधे के विकास में सहायक होते हैं परन्तु हर एक के बीज के अनुसार भेद तो होंगे। पर अगर हमारा समर्पण सम्पूर्ण है तो हमारे अन्दर उनकी शक्ति, उनका ज्ञान प्रकट होगा। जैसे-जैसे हमारा समर्पण पूर्ण होता जायेगा वैसे-वैसे भगवान् का मार्ग खुलता जायेगा। यही एकमात्र तरीक़ा है।

एक बार एक बच्चा माताजी के पास लाया गया। उसे देख कर माताजी ने मन ही मन कहा, इसका चेहरा परिचित है। तीसरे पहर माताजी ने एक अन्तर्दर्शन में ध्यान में देखा कि एक बहुत बड़ा मिस्री महल है जिसमें एक विशाल आँगन था, जिसमें एक नाला था और जिसमें से महल का पानी बहता था। नाले में उन्होंने एक बच्चे को खेलते देखा जिसका चेहरा ठीक उस बच्चे जैसा था जिसे माताजी ने दिन में पहले देखा था। उसके पीछे उन्होंने एक शिक्षक को आते देखा तो उससे पूछा, 'तुम इस बच्चे को इस जगह क्यों खेलने देते हो?' उसने जवाब दिया, 'एमेनहोटप को यह पसन्द है।' तब माताजी को पता लगा कि यह बच्चा एमेनहोटप था। इस तरह से पिछले जीवनों की चैत्य-स्मृतियाँ आया करती हैं।

मुझे याद है, एक बार मैं अपने एक मित्र के परिवार को माताजी के पास लेकर गया। जब माताजी उन सज्जन की पत्नी के पास पहुँचीं तो

उनके सामने तीन पीढ़ियाँ थीं, माँ, बेटा और उसके बच्चे। माताजी ने उन महिला से कहा, "मैं तुम्हें जानती हूँ। जब मैं मिस्र में थी तो तुम भी वहाँ थीं।" चैत्य सत्ता ऐसी बातें जानती है। तो जब हम चैत्य के साथ सम्पर्क करते हैं तो पिछले जन्मों की जानकारी भी पा लेते हैं।

आत्म-निरीक्षण में कुछ समय लगाना और अपनी आन्तरिक सत्ता को व्यवस्थित करना बहुत मज़ेदार होता है। जो लोग वैज्ञानिक तरीक़े से गम्भीरता से योग सीखना और उसका अभ्यास करना चाहते हैं उनके लिए यह बहुत ज़रूरी और आवश्यक भी है। मैं श्रीअरविन्द या अपने पूर्वजों से बढ़ कर ऐसा कोई वैज्ञानिक नहीं जानता जिनके लिए कोई चीज़ कल्पना नहीं, जिन्होंने हर चीज़ का अनुभव किया था।

यह आश्चर्य की बात है कि जब अन्तर के स्तर खुलते हैं तो ऐसे शब्द सुनायी देते हैं, ऐसे रूप दिखायी देते हैं, ऐसे रंग दिखायी देते हैं जो भौतिक स्तर पर देखे गये सभी रूपों, रंगों और ध्वनियों से ज़्यादा स्पष्ट, ज़्यादा ठोस होते हैं। वहाँ चीज़ें इतनी ज़्यादा ठोस होती हैं कि तुम वास्तव में देख-सुन और अनुभव कर सकते हो। अधिकतर लोग उन्हें स्वप्न में देखते हैं। योग में हम उन्हें केवल स्वप्न या ध्यान में नहीं बल्कि खुली आँखों से भी देखते हैं। जैसे-जैसे तुम विभिन्न स्तरों में खुली आँखों से जाना सीखते हो, वैसे-वैसे तुम उन स्तरों पर चीज़ें देखने लगते हो, और एक बार तुम दूर हट कर खड़े रहना जान लो तो तुम चीज़ों को ज़्यादा ठोस रूप में देखते हो; तुम अपने पड़ोस में बैठे व्यक्ति को जितनी आसानी से देख सकते हो उतनी ही आसानी से। चीज़ें आन्तरिक स्तरों में कैसे काम करती हैं इसके बारे में तुमको सन्देह नहीं रहता। अगर तुम अपने आन्तरिक स्तरों को नहीं जानते तो तुम अपने व्यक्तित्व को ठोस रूप कैसे दे सकोगे?

(क्रमशः) —नवजातजी

हर एक के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि वह जितनी अधिक सच्चाई से हो सके, प्रगति करे। भौतिक कष्ट रूपान्तर के कार्य का भाग हैं और उन्हें शान्ति के साथ स्वीकार कर लेना चाहिये।

—श्रीमाँ

ताकि वहाँ भी आपको पहचान लूँ...

नाइजीरिया के अरबपति Femi Otldol की ज़ुबानी में उनकी एक कहानी, या यूँ कहें, सच्ची घटना—

टेलीफ़ोन पर हुए एक साक्षात्कार में जब उनसे पूछा गया, 'सर, आप ऐसी कोई अमूल्य बात बतलाइये जिसने आपको जीवन की सबसे ज़्यादा ख़ुशी दी।' फ़ेमी ने कहा: मैं जीवन की ख़ुशी के चार पड़ावों से गुज़रा और आख़ीर में मेरे हाथों में जीवन की सच्ची ख़ुशी का सूत्र थमा।

पहला पड़ाव था—धन जुटाना, धन—अधिक धन पाने के साधन बढ़ाना। लेकिन इस अवस्था में मुझे मन माफ़िक ख़ुशी नहीं मिली।

दूसरा पड़ाव आया—हीरे-जवाहरात, क़ीमती सामानों का ढेर लगाना; लेकिन मैंने देखा कि जीवन में इनका प्रभाव भी अस्थायी होता है, इनकी चमक-दमक भी हमेशा नहीं रहती।

फिर आया वह पड़ाव जब मैं बड़ी-बड़ी परियोजनाओं का हिस्सा बना —नाइजीरिया और अफ़्रीका की डीज़ल कम्पनियों का मैं ९५ प्रतिशत साझेदार था, अफ़्रीका और एशिया के सबसे बड़े जहाज़ का मालिक। लेकिन यहाँ भी मुझे वह ख़ुशी नहीं मिली जो मेरी कल्पना में बसी थी।

चौथा पड़ाव वह था जब मेरे एक दोस्त ने मुझसे कुछ २०० अपंग बच्चों के लिए 'व्हील चेयर' ख़रीदने को कहा। मित्र के कहे अनुसार मैंने फ़ौरन ख़रिदवा दीं।

जब कुर्सियाँ बाँटने का समय आया तो दोस्त ने आग्रह किया कि मैं साथ चल कर अपने हाथों से बच्चों को भेंट करूँ। मैं चला गया। बच्चों को थमाते हुए उनके चेहरों की दमक, उनकी आँखों की चमक ने मेरे रोम-रोम को महका दिया और जब मैंने उन्हें अपनी नयी मिली 'व्हील चेयर' पर बैठे इधर-से-उधर चकरघिन्नी की तरह घूमते, खिलखिलाते, दसों दिशाओं में किलकारियाँ बिखेरते देखा तब तो मैं निहाल हो उठा! उनकी उस ख़ुशी में मुझे लगा मानों मैंने कोई ख़ज़ाना लूट लिया हो। मेरी ख़ुशी का न अता था न पता। आख़िर जब मैं चलने को हुआ तब एक प्यारे से बच्चे ने मेरी पतलून अपनी मुट्ठी में पकड़ ली, मैं हलके से छुड़ाने को हुआ तो उसकी जकड़ और मज़बूत हो गयी और चेहरा उठा कर वह मुझे ताकने लगा।

मैं उसकी तरफ़ झुका, प्यार से उसके गाल को थपथपा कर मैंने उससे पूछा—"बेटे, और कुछ भी चाहते हो क्या?"

कुछ देर तक टकटकी बाँधे वह मेरे चेहरे को देखता रहा फिर देवदूत की-सी मुस्कान, देवदूत की-सी वाणी में बोल उठा—

मैं आपका चेहरा याद करके अपने दिल में बसाना चाहता हूँ ताकि जब स्वर्ग में आपसे मुलाक़ात हो तो मैं आपको फ़ौरन पहचान कर वहाँ भी आपका शुक्रिया अदा कर सकूँ।

'इंटरनेट' से साभार —वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

साभार :

फूलश्री देवड़ा सेवा कोश

रजनीगन्धा १३ ई

२५, बालीगंज पार्क, कोलकाता- ७०००१९

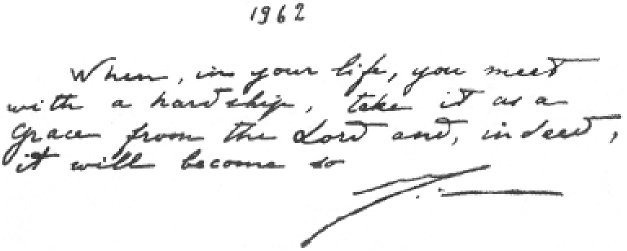

1962

When, in your life, you meet with a hardship, take it as a Grace from the Lord and, indeed, it will become so

जब कभी, अपने जीवन में तुम्हें संकट का सामना करना पड़े तो उसे प्रभु की कृपा के वरदान के रूप में लो और वह वही बन जायेगा।

श्रीमातृवाणी खण्ड १४: १०४ **श्रीमाँ**

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

SRI AUROBINDO SOCIETY

Notice for the Annual General Meeting

The Annual General Meeting of the members of Sri Aurobindo Society will be held on Saturday, the 24th September 2022, at 4.00 p.m. at its registered office, Sri Aurobindo Bhavan, 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, to transact the following business:

1. To confirm the minutes of the last Annual General Meeting held on 7th February 2022.
2. To consider and approve the audited Balance Sheet and Income & Expenditure Account of the Society for the year ended 31.03.2022.
3. To consider and adopt the Executive Committee's Annual Report of Activities for the year 2021–2022.
4. To appoint an auditor for the Society for the year 2022-2023.
5. To consider and adopt the decision of the Executive Committee of the Society to amend Clause 3.1 of the Rules & Regulations to increase the maximum number of members of the Executive Committee to 15 (Fifteen only).
6. To consider any other matter with the permission of the chair.

Sd/-

18.08.2022 (Pradeep Narang)

Puducherry Chairman

Note: The members are entitled to appoint proxy. Proxies must be deposited at the Registered Office of the Society, No.8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, during office hours, in advance but not less than 48 hours before the time of the meeting. The proxy should be a member of the Society. Proxy form is printed below.

✂ ....✂ ....✂ ....✂

PROXY

SRI AUROBINDO SOCIETY,
Regd. Office: 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071.

I, ………………………… being a member of Sri Aurobindo Society, having membership No. ……………….. valid upto ………... do hereby appoint ………………………… having Society's membership No. ……………… valid upto ……… as my proxy in my absence to attend and vote for me and on my behalf at the Annual General Meeting of the Society, to be held on Saturday, the 24th September 2022, at 4.00 p.m. and at any adjournment thereof.

In witness whereof, I have set my hand this
…………..... day of .....…… 2022.

Revenue Stamp

(Signature of the member across the stamp)

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

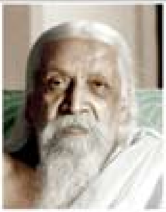

विनम्र अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुदुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

Proposed View

Date of Publication: 1st August 2022
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70